ॐ

श्री सर्वज्ञवीतरागाय नमः

श्रीमद्-देवसेनाचार्य-प्रणीत

श्री

दर्शनसार

ॐ

श्री सर्वज्ञवीतरागाय नमः

श्रीमद्-देवसेनाचार्य-प्रणीत

श्री

दर्शनसार

आचार्य देवसेन विरचित "दर्शन सार" जी का यह डिजिटल वर्जन तैयार करते हुए अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है, इसमें मूल श्लोक एवं उसके अन्वयार्थ को समाहित किया गया है।

चूंकि हम अल्प बुद्धि वाले अल्प ज्ञानी जीव हैं तो यदि प्रमाद वश या भूलवश कोई टाइपिंग सम्बंधी त्रुटि हुई है तो उसके लिए करबद्ध क्षमा प्रार्थी हैं । आप अपने सुझाव एवं किसी भी टाइपिंग संबंधी त्रुटि को निम्न ईमेल पर साझा कर सकते हैं।

infinitejainism@gmail.com

आशा है कि हम सभी इस महान ग्रंथ श्री दर्शन सार जी का स्वाध्याय कर अपने मोक्ष मार्ग को शीघ्र प्रशस्त करेगें

चूंकि ये ग्रंथ की हार्डकॉपी सहजता से अधिक जगहों पर उपलब्ध नहीं है यदि कोई साधर्मी जन इस महान ग्रन्थ को छपवाकर, साधर्मी जनों के स्वाध्याय हेतु इसको सहजता से उपलब्ध करवा पाएं तो जिनवाणी की और जैन धर्म की बड़ी प्रभावना होगी।

श्री सर्वज्ञवीतरागाय नम:

दर्शनसार

मंगलाचरण

पणमिय वीरजिणिंदं सुरसेणणमंसियं विमलणाणं।
वोच्छं दंसणसारं जह कहियं पुव्वसूरीहिं ॥1॥

अन्वयार्थ : जिनका ज्ञान निर्मल है और देवसमूह जिन्हें नमस्कार करते हैं, उन महावीर भगवान को प्रणाम करके, मैं पूर्वाचार्यों के कथनानुसार 'दर्शनसार' अर्थात् दर्शनों या जुदा-जुदा मतों का सार कहता हूँ।

भरहे तित्थयराणं पणमियदेविंदणागगरुडानाम्।
समएसु होंति केई मिच्छत्तपवट्टगा जीवा ॥2॥

अन्वयार्थ : इस भारतवर्ष में, इन्द्र-नागेन्द्र-गरुडेन्द्र द्वारा पूजित तीर्थंकरों के समयों में (धर्मतीर्थों में) कितने ही मनुष्य मिथ्यामतों प्रवर्तक के होते हैं।

उसहजिणपुत्तपुत्तो मिच्छत्तकलंकिदो महामोहो।
सव्वेसिं भट्टाणं धुरि गणिओ पुव्वसूरीहिं ॥3॥

अन्वयार्थ : पूर्वाचार्यों के द्वारा, भगवान् ऋषभदेव का महामोही और मिथ्यात्वी पोता 'मरीचि' तमाम दार्शनिकों या मत-प्रवर्तकों का अगुआ गिना गया है।

तेण य कयं विचित्तं दंसणरूवं संजुत्तिसंकलियं।
तम्हा इयराणं पुण समए तं हाणिबिड्डिगयं ॥4॥

अन्वयार्थ : उसने एक विचित्र दर्शन या मत ऐसे ढंग से बनाया कि वह आगे चलकर उससे भिन्न-भिन्न मत प्रवर्तकों के समयों में हानिवृद्धि को प्राप्त होता रहा। अर्थात् उसी के सिद्धान्त थोड़े बहुत परिवर्तित होकर आगे के अनेक मतों के रूप में प्रकट होते रहे।

एयंतं संसइयं विवरीयं विणयजं महामोहं।
अण्णाणं मिच्छत्तं णिद्दिट्ठं सव्वदरसीहिं ॥5॥

अन्वयार्थ : सर्वदर्शी ज्ञानियों ने मिथ्यात्व के पाँच भेद बताये हैं - एकान्त, संशय, विपरीत, विनय और अज्ञान।

सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्तिमुणी ॥6॥

अन्वयार्थ : श्रीपार्श्वनाथ भगवान के तीर्थ में सरयू नदी के तटवर्ती पलाश नामक नगर में पिहितास्रव साधु का शिष्य बुद्धकीर्ति मुनि हुआ जो महाश्रुत या बड़ा भारी शास्त्रज्ञ था।

तिमिपूरणासणेहिं अहिगयपवज्जाओ परिब्भट्टो।
रत्तंबरं धरित्ता पवट्टियं तेण एयंतं ॥7॥

अन्वयार्थ : मछलियों के आहार करने से वह ग्रहण की हुई दीक्षा से भ्रष्ट हो गया और रक्ताम्बर (लाल वस्त्र) धारण करके उसने एकान्त मत की प्रवृत्ति की।

मंसस्स णत्थि जीवो जहा फले दहिय-दुद्ध-सक्करए।
तम्हा तं वंछित्ता तं भक्खंतो ण पाविट्ठो ॥8॥

अन्वयार्थ : फल, दही, दूध, शक्कर, आदि के समान मांस में भी जीव नहीं है, अतएव उसकी इच्छा करने और भक्षण करने में कोई पाप नहीं है।

मज्जं ण वज्जणिज्जं दवदव्वं जहजलं तहा एदं।
इदि लोए घोसित्ता पवट्टियं सव्वसावज्जं ॥9॥

अन्वयार्थ : जिस प्रकार जल एक द्रव (तरल या बहने-वाला) पदार्थ है उसी प्रकार शराब है, वह त्याज्य नहीं है। इस प्रकार की घोषणा करके उसने संसार में सम्पूर्ण पापकर्म की परिपाटी चलाई।

अण्णो करेदि कम्मं अण्णो तं भुंजदीदि सिद्धंतं।
परि कप्पिऊण णूणं वसिकिच्चा णिरयमुववण्णो ॥10॥

अन्वयार्थ : एक पाप करता है और दूसरा उसका फल भोगता है, इस तरह के सिद्धान्त की कल्पना करके और उससे लोगों को वश में करके या अपने अनुयायी बनाकर वह मरा और नरक में गया। (इसमें बौद्ध के क्षणिकवाद की ओर इशारा किया गया है। जब संसार की सभी वस्तुएँ क्षणस्थायी हैं, तब जीव भी क्षणस्थायी ठहरेगा और ऐसी अवस्था में एक मनुष्य के शरीर में रहने वाला जीव जो पाप करेगा उसका फल वही जीव नहीं, किन्तु उसके स्थान पर-आने वाला दूसरा जीव भोगेगा।)

छत्तीसे वरिससए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरहे वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो ॥11॥

अन्वयार्थ : विक्रमादित्य की मृत्यु के १३६ वर्ष बाद सौराष्ट्र देश के वल्लभीपुर में श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ।

सिरिभद्दबाहुगणिणो सीसो णामेण संति आइरिओ।
तस्स य सीसो दुट्ठो जिणचंदों मंदचारित्तो ॥12॥

अन्वयार्थ : श्रीभद्रबाहुगणि के शिष्य शान्ति नाम के आचार्य थे। उनका 'जिनचन्द्र' नाम का एक शिथिलाचारी और दुष्ट शिष्य था।

तेण कियं मयमेयं इत्थीणं अत्थि तब्भवे मोक्खो।
केवलणाणीण पुणो अद्दक्खाणं तहा रोओ ॥13॥

अन्वयार्थ : उसने यह मत चलाया की स्त्रियों को उसी भव में स्त्री-पर्याय ही से मोक्ष प्राप्त हो सकता है और केवलज्ञानी भोजन करते हैं तथा उन्हें रोग भी होता है।

अंबरसहिओ वि जई सिज्झइ वीरस्स गब्भचारत्तं।
पर लिंगे वि य मुत्ती फासुयभोजं च सव्वत्थ ॥14॥

अन्वयार्थ : वस्त्रधारण करने वाला भी मुनि मोक्ष प्राप्त करता है, महावीर भगवान के गर्भ का संचार हुआ था, (वे पहले ब्राह्मणी के गर्भ में आये, पीछे क्षत्रियाणी के गर्भ में चले गये), जैनमुद्रा के अतिरिक्त अन्य मुद्राओं या वेषों से भी मुक्ति हो सकती है और प्रासुक भोजन सर्वत्र हर किसी के यहाँ कर लेना चाहिए।

अण्णं च एवमाइ आगमदुट्ठाइं मित्थसत्थाइं।
विरइत्ता अप्पाणं परिठवियं पढमए णरए ॥15॥

अन्वयार्थ : इसी प्रकार और भी आगम विरुद्ध बातों से दूषित मिथ्या शास्त्र रचकर वह पहले नरक को गया।

सुव्वयतित्थे उज्झो खीरकदंबुत्ति सुद्धसम्मत्तो।
सीसो तस्स य दुठ्ठो पुत्तो वि य पव्वओ वक्को ॥16॥

अन्वयार्थ : बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के समय में एक क्षीरकदम्ब नाम का उपाध्याय था। वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि था। उसका (राजा वसु नाम का) शिष्य दुष्ट था और पर्वत नाम का पुत्र वक्र था।

विवरीयमयं किच्चा विणासियं सच्चसंजमं लोए।
तत्तो पत्ता सव्वे सत्तमणरयं महाघोरं ॥17॥

अन्वयार्थ : उन्होंने विपरीत मत बनाकर संसार में जो सच्चा संयम (जीवदया) था, उसको नष्ट कर दिया और इसके फल से वे सब (पर्वत की माता आदि भी) घोर सातवें नरक में जा पड़े।

सव्वेसु य तित्थेसु य वेणइयाणं समुब्भवो अत्थि।
सजडा मुंडियसीसा सिहिणो णंगा य केई य ॥18॥

अन्वयार्थ : सारे ही तीर्थों में अर्थात् सभी तीर्थंकरों के शासन में वैनयिकों का उद्भव होता रहा है। उनमें कोई जटाधारी, कोई मुंडे, काई शिखाधारी और कोई नग्न रहे हैं।

दुठ्ठे गुणवंते वि य समया भत्तीय सव्वेदेवाणं।
णमणं दंडुव्व जणे परिकलियं तेहि मूढेहिं ॥19॥

अन्वयार्थ : चाहे दुष्ट हो चाहे गुणवान हो, दोनों में समानता से भक्ति करना और सारे ही देवों को दण्ड के समान आड़े पड़कर नमन करना, इस प्रकार के

विनय करने से या भक्ति करने से मुक्ति होती है, यही इस मत का सिद्धान्त जान पड़ता है।

सिद्धान्त को उन मूर्खों ने लोगों में चलाया।

सिरिवीरणाहतित्थे बहुस्सुदो पाससंघगणिसीसो।
मक्कडिपूरणसाहू अण्णाणं भासए लोए ॥20॥

अन्वयार्थ : महावीर भगवान के तीर्थ में पार्श्वनाथ तीर्थंकर के संघ के किसी गणी का शिष्य मस्करी पूरन नाम का साधु था। उसने लोक में अज्ञान मिथ्यात्व का उपदेश दिया।

अण्णाणादो मोक्खो णाणं णत्थीति मुत्तजीवाणं ॥
पुणरागमनं भमणं भवे भवे णत्थि जीवस्स ॥21॥

अन्वयार्थ : अज्ञान से मोक्ष होता है। मुक्त जीवों को ज्ञान नहीं होता। जीवों का पुनरागमन नहीं होता, अर्थात् वे मरकर फिर जन्म नहीं लेते और उन्हें भवभव में भ्रमण नहीं करना पड़ता।

एक्को सुद्धो बुद्धो कत्ता सव्वस्स जीवलोयस्स।
सुण्णज्झाणं वण्णावरणं परिसिक्खियं तेण ॥22॥

अन्वयार्थ : सारे जीवलोक का एक शुद्ध-बुद्ध परमात्मा कर्ता है, शून्य या अमूर्तिक रूप ध्यान करना चाहिए, और वर्णभेद नहीं मानना चाहिए, इस-प्रकार का उसने उपदेश दिया।

जिणमग्गबाहिरं जं तच्चं संदरसिऊण पावमणो।
णिच्चणिगोयं पत्तो सत्तो मज्जेसु विविहेसु ॥23॥

अन्वयार्थ : और भी बहुत सा जैनधर्म से बहिर्भूत उपदेश देकर और तरह-तरह की शराबों में आसक्त रहकर वह पापी नित्यनिगोद को प्राप्त हुआ।

सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो।
णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्तो ॥24॥
अप्पासुयचणयाणं भक्खणदो वज्जिदो मुणिंदेहिं।
परिरइयं विवरीयं विसेसियं वग्गणं चोज्जं[1]॥25॥जुम्मं।

अन्वयार्थ : श्रीपूज्यपाद या देवनन्दि आचार्य का शिष्य वज्रनन्दि द्रविड संघ का उत्पन्न करने वाला हुआ। यह प्राभृत ग्रन्थों का ज्ञाता और महान पराक्रमी था। मुनिराजों ने उसे अप्रासुक या सचित्त चने को खाने से रोका; क्योंकि इसमें दोष होता है, पर उसने न माना और बिगड़कर विपरीतरूप प्रायश्चित्तादि शास्त्रों की रचना की।

बीएसु णत्थि जीवो उब्भसणं णत्थि फासुगं णत्थि।
सावज्जं ण हु मण्णइ ण गणइ गिहकप्पियं अट्ठं ॥26॥

अन्वयार्थ : उसके विचारानुसार बीजों में जीव नहीं हैं, मुनियों को खड़े-खड़े भोजन करने की विधि नहीं है, कोई वस्तु प्रासुक नहीं है। वह सावद्य भी नहीं मानता और गृहकल्पित अर्थ को नहीं गिनता।

कच्छं खेत्तं वसहिं वाणिज्जं कारिऊण जीवंतो।
ण्हंतो सीयलणीरे पावं पउरं स संजेदि ॥27॥

अन्वयार्थ : कछार (नदी किनारे की भूमि), खेत, वसतिका और वाणिज्य आदि कराके जीवन-निर्वाह करते हुए और शीतल जल में स्नान करते हुए उसने प्रचुर

1 - ('विशेषितं वर्ग्गणं चोद्यम्' पर अन्य पुस्तक में जो टिप्पणी दी है उसका अर्थ यह है कि उसने प्रायश्चित्त शास्त्र बनाये। उसी के अनुसार हमने यह अर्थ लिया है; परन्तु इसका अर्थ स्पष्ट: समझमें नहीं आया।)

पाप का संग्रह किया। अर्थात् उसने ऐसा उपदेश दिया कि मुनिजन यदि खेती करावें, रोजगार करावें, वसतिका बनवावें और अप्रासुक जल में स्नान करें तो कोई दोष नहीं है।

पंचसए छठ्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।[1]
दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो ॥28॥

अन्वयार्थ : विक्रमराजा की मुत्यु के ५२६ वर्ष बीतने पर दक्षिण मथुरा (मदुरा) नगर मे यह महामोहरूप द्राविडसंघ उत्पन्न हुआ।

कल्लाणे वरणयरे संत्तसए पंच उत्तरे जादे।
जावणियसंघभावो सिरिकलसादो हु सेवड़दो ॥29॥

अन्वयार्थ : कल्याण नाम के नगर में विक्रम मृत्यु के ७०५ वर्ष बीतने पर (दूसरी प्रति के अनुसार २०५ वर्ष बीतने पर) श्रीकलश नाम के श्वेताम्बर साधु से यापनीय संघ का सद्भाव हुआ।

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी।
सिरिपउमनंदिपच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरो ॥30॥

अन्वयार्थ : श्रीवीरसेन के शिष्य जिनसेन स्वामी सकल शास्त्रों के ज्ञाता हुए। श्रीपद्मनन्दि या कुन्दकुन्दाचार्य के बाद ये ही चारों संघों के उद्धार करने में समर्थ हुए।

तस्स य सिस्सो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो
पक्खुववासुट्ठमदी महातवो भावलिंगो य ॥31॥

1 - अन्य प्रति में 'दुण्णि सए पंच उत्तरे' ऐसा पाठ है, जिसका अर्थ होता है, २०७ वर्ष।

अन्वयार्थ : उनके शिष्य गुणभद्र हुए, जो गुणवान, दिव्यज्ञान परिपूर्ण, पक्षोपवासी, शुद्धमति, महातपस्वी और भावलिंग के धारक थे।

तेण पुणो वि य मिच्चुं णाऊण मुणिस्स विणयसेणस्या।[1]
सिद्धंतं घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥32॥

अन्वयार्थ : विनयसेन मुनि की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने सिद्धान्तों का उपदेश दिया, और फिर वे स्वयं भी स्वर्गलोक को चले गये। अर्थात् जिनसेन मुनि के पश्चात् विनयसेन आचार्य हुए और फिर उनके बाद गुणभद्र स्वामी हुए।

आसी कुमारसेणो णंदियडे विणयसेणदिक्खियओ।
सण्णासभंजणेण य अगहियपुणदिक्खओ जादो ॥33॥

अन्वयार्थ : नन्दीतट नगर में विनयसेन मुनि के द्वारा दीक्षित हुआ कुमारसेन नाम का मुनि था। उसने सन्यास से भ्रष्ट होकर फिर से दीक्षा नहीं ली और -

परिवज्जिऊण पिच्छं चमरं घित्तूण मोहकालिएण।
उम्मग्गं संकलियं बागडविसएसु सव्वेसु ॥34॥

अन्वयार्थ : मयूर-पिच्छि को त्यागकर तथा चँवर (गौ के बालों की पिच्छी) ग्रहण करके उस अज्ञानी ने सारे बागड़ प्रान्त में उन्मार्ग का प्रचार किया।

इत्थीणं पुणदिक्खा खुल्लयछोयस्स वीरचरियत्तं।
कक्कसकेसग्गहणं छट्ठं च गुणव्वदं नाम ॥35॥
आयमसत्थपुराणं पायच्छित्तं च अण्णहा किंपि।

1 - "तेणप्पणों वि मिच्चुं" अर्थात् "उन्होंने अपनी भी मृत्यु जानकर" इस प्रकार का पाठ अन्य प्रतियों में है।

विरइत्ता मिच्छत्तं पवट्टियं मूढलोएसु ॥36॥

अन्वयार्थ : उसने स्त्रियों को दीक्षा देने का, क्षुल्लकों को वीरचर्या का मुनियों को कड़े बालों की पिच्छी रखने का और (रात्रिभोजन-त्याग नामक) छट्ठे गुणव्रत का विधान किया। इसके सिवाय उसने अपने आगम, शास्त्र, पुराण और प्रायश्चित्त ग्रन्थों को कुछ और ही प्रकार के रचकर मूर्ख लोगों में मिथ्यात्व का प्रचार किया।

सो समणसंघवज्जो कुमारसेणो हु समयमिच्छतो।
चत्तोवसमो रुद्दो कट्ठं संघं परूवेदि ॥37॥

अन्वयार्थ : इस तरह उस मुनिसंघ से बहिष्कृत, समय-मिथ्यादृष्टि, उपशम को छोड़ देने वाले और रौद्र परिणाम वाले कुमारसेन ने काष्ठासंघ का प्ररूपण किया।

सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
णंदियडे वरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥38॥
णंदिययडे वरगामे कुमारसेणो य सत्थाविण्णाणी।
कट्ठो दंसणभट्ठो जादो सल्लेहणाकाले ॥39॥

अन्वयार्थ : विक्रमराजा की मुत्यु के ७५३ वर्ष बाद नन्दीतट ग्राम में काष्ठासंघ हुआ। इस नन्दीतट ग्राम में कुमारसेन नाम का शास्त्रज्ञ सल्लेखना के समय दर्शन से भ्रष्ट होकर काष्ठासंघी हुआ।

तत्तो दुसएतीदे महुराए माहुराण गुरुणाहो।
णामेण रामसेणो णिप्पिच्छं वण्णियं तेण ॥40॥

अन्वयार्थ : इसके २०० वर्ष बाद अर्थात् विक्रम की मृत्यु के ९५३ वर्ष बाद मथुरा नगर में माथुर संघ का प्रधान गुरु रामसेन हुआ। उसने निःपिच्छिक रहने का वर्णन क़िया। अर्थात् यह उपदेश दिया कि मुनियों को न मोर के पंखों की पिच्छी

रखने की आवश्यकता है और न बालों की। उसने पिच्छी का सर्वथा ही निषेध कर दिया।

सम्मत्तपयडिमिच्छंतं कहियं जं जिणिंदविंवेसु।
अप्पपरणिट्ठिएसु य ममत्तबुद्धीए परिवसणं ॥41॥
एसो मम होउ गुरू अवरो णत्थित्ति चित्तपरियरणं।
सगगुरुकुलाहिमाणो इयरेसु वि भंगकरणं च ॥42॥

अन्वयार्थ : उसने अपने और पराये प्रतिष्ठित किये हुए जिनबिम्बों की ममत्व बुद्धि द्वारा न्यूनाधिक भाव से पूजा-वन्दना करने; मेरा गुरु यह है, दूसरा नहीं है, इस प्रकार के भाव रखने; अपने गुरुकुल (संघ) का अभिमान करने और दूसरे गुरुकुलों का मानभंग करने रूप सम्यक्त्व-प्रकृतिमिथ्यात्व का उपदेश दिया।

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विदोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥43॥

अन्वयार्थ : विदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धर स्वामी के समवसरण में जाकर श्रीपद्मनन्दिनाथ (कुन्दकुन्द स्वामी) ने जो दिव्य-ज्ञान प्राप्त किया था, उसके द्वारा यदि वे बोध न देते, तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?

भूयबलिपुप्फयंता दक्खिणदेसे तहोत्तरे धम्मं।
जं भासंति मुणिंदा तं तच्चं णिव्वियप्पेण ॥44॥

अन्वयार्थ : भूतबलि और पुष्पदन्त इन दो मुनियों ने दक्षिण देश में और उत्तर में जो धर्म बतलाया, वही बिना किसी विकल्प के तत्त्व है, अर्थात् धर्म का सच्चा स्वरूप है।

दक्खिणदेसे विंझे पुक्कलए वीरचंदमुणिणाहो।
अट्ठारसएतीदे भिल्लयसंघं परुवेदि ॥45॥
सोणियगच्छंकिच्चा पड़िकमणंतहयभिण्णकिरियाओ।
वण्णाचारविवाई जिणमग्गं सुट्ठु णिहणेदि ॥46॥

अन्वयार्थ : दक्षिणदेश में [1]विन्ध्य-पर्वत के समीप पुष्कर नाम के ग्राम में वीरचन्द्र नाम का मुनिपति विक्रमराजा की मुत्यु के १८०० वर्ष बीतने के बाद भिल्लक संघ को चलायगा। वह अपना एक जुदा गच्छ बनाकर जुदा ही प्रतिक्रमण विधि बनायगा, भिन्न क्रियाओं का उपदेश देगा, और वर्णाचार का विवाद खड़ा करेगा। इस तरह वह सच्चे जैन-धर्म का नाश करेगा।

तत्तो ण कोवि भणिओ गुरुगणहरपुंगवेहिं मिच्छत्तो।
पंचमकालवसाणे सिच्छंताणं विणासो हि ॥47॥

अन्वयार्थ : इसके बाद गणधर गुरु ने और किसी मिथ्यात्व का या मत का वर्णन नहीं किया। पंचमकाल के अन्त में सच्चे शिक्षक मुनियों का नाश हो जायगा।

एक्को वि य मूलगुणो वीरंगजणामओ जई होई।
सो अप्पसुदो वि परं वीरोव्व जणं पवोहेइ ॥48॥

अन्वयार्थ : केवल एक ही वीरांगज नाम का यति या साधु मूलगुणों का धारी होगा, जो अल्पश्रुत (शास्त्रों का थोड़ा ज्ञान रखने वाला) होकर भी वीर भगवान के समान लोगों को उपदेश देगा।

---

1 - श्रवणबेलगुरु में विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि नाम के दो पर्वत हैं। विन्ध्य से ग्रन्थकर्ता का अभिप्राय वहीं के विन्ध्य-पर्वत से होना चाहिए। दक्षिण में और कोई विन्ध्य-पर्वत (हमारी जानकारी में) नहीं है।

पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संबसंतेण ॥49॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए।
सिरि पासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥50॥

अन्वयार्थ : श्रीदेवसेन गणि ने माघ सुदी १० वि. संवत् ९०९ को धारानगरी में निवास करते समय पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर में पूर्वाचार्यों की बनाई हुई गाथाओं को एकत्र करके यह दर्शनसार नाम का ग्रन्थ बनाया, जो भव्य-जीवों के हृदय में हार के समान शोभा देगा।

रूसउ तूसउ लोओ सच्चं अक्खंतयस्स साहुस्स।
किं जूयभए साडी विवज्जियव्वा णरिंदेण ॥51॥

अन्वयार्थ : सत्य कहने वाले साधु से चाहे कोई रुष्ट हो और चाहे सन्तुष्ट हो। उसे इसकी परवा नहीं। क्या राजा को जुओं के भय से वस्त्र पहनना छोड़ देना चाहिए? कभी नहीं।

• इति शुभम् •

पण्डित दौलतराम जी कृत भजन

आपा नहिं जाना तूने कैसा ज्ञानधारी रे॥
देहाश्रित करि क्रिया आपको, माने शिवमगचारी रे।
निज- निवेद बिन घोर परीषह, विफल कही जिन सारी रे॥1॥ आपा...॥
शिव चाहे तो द्विविध कर्म तें , कर निज परिनति न्यारी रे।
'दौलत' जिन निजभाव पिछान्यो, तिन भव -विपति विदारी रे॥2॥ आपा...॥

आचार्य श्री सूर्य सागर जी महाराज द्वारा रचित ग्रंथों की pdf

Download PDF here

हमारे द्वारा बनाई गई अन्य सभी शास्त्रों की pdf

Download PDF here

or

इन ग्रंथो की पीडीएफ आप jainmandir.org
साइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।

Download PDF here